क्या निजी स्कूल वास्तव में बच्चों के बेहतर अधिगम–परिणाम सुनिश्चित करते हैं?

डी.डी. करोपाडी

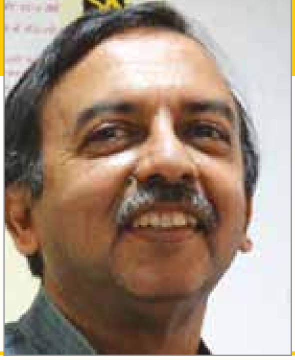

निजी और सरकारी स्कूलों की तुलना करने वाली यह बहस सदियों पुरानी है। लेकिन आम धारणा के विपरीत, कई देशों में हाल में हुए शोधों से ये संकेत मिलते हैं कि सामान्य तौर पर निजी स्कूल सरकारी स्कूलों की तुलना में अधिगम–परिणामों को बेहतर नहीं बनाते। इस लेख में हाल में हुए कुछ अध्ययनों के निष्कर्षों की मदद से इसी मुद्दे पर चर्चा की गई है।

परिचय

क्या भारत में निजी स्कूल वाकई अच्छे हैं? इस लेख के पाठकों के मन में यह प्रश्न कभी न कभी अवश्य आया होगा और पता नहीं कि उन्हें इसका कोई निश्चित उत्तर मिला या नहीं क्योंकि इसका उत्तर खोज पाना आसान नहीं है।

सबसे पहली बात तो यह कि निजी स्कूलों में भी विस्तृत विविधता देखने को मिलती है। जैसे कि अत्यन्त महँगे शहरी निजी स्कूल, प्रीमियम आवासीय स्कूल, 'वैकल्पिक स्कूल', शहरी मध्यम वर्ग की आवश्यकताओं का ध्यान रखने वाले निजी स्कूल, कम फीस लेने वाले निजी स्कूल (ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में) इत्यादि। इसलिए इन सभी को एक ही समूह में रखना गलत होगा। इस प्रश्न का उत्तर देना इसलिए भी कठिन हो जाता है क्योंकि 'अच्छे स्कूल' की परिभाषा और उसके मापन के बारे में भी आम सहमति नहीं बन पाई है। शिक्षा एक जटिल विषय है और इस पर स्कूल के भीतर मौजूद अनेक कारकों का प्रभाव तो पड़ता ही है जैसे पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें, शिक्षा शास्त्र, शिक्षकों की संख्या, शिक्षकों की तैयारी, शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात आदि; साथ ही घर के वातावरण, सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, शिक्षा सम्बन्धी सहायता की उपलब्धता जैसे बाहरी कारक भी उसे प्रभावित करते हैं।

अधिगम–परिणाम अनेक मापदण्डों में से केवल एक मापदण्ड है लेकिन यह काफी महत्त्वपूर्ण है और अपेक्षाकृत आसानी से मापा जा सकता है तथा इसे व्यापक रूप से समझा जाता है। इस लेख में मैं कुछ शोध अध्ययनों से प्राप्त ऐसे निष्कर्षों पर चर्चा करूँगा जो अधिगम–परिणामों पर आधारित तरीकों का उपयोग करके इन निष्कर्षों तक पहुँचे हैं। हालाँकि मैं यह तो नहीं कहूँगा कि इनसे स्पष्ट उत्तर मिल जाएँगे लेकिन यह आशा जरूर है कि इससे इस दुरूह विषय पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ेगा।

निजी और सरकारी स्कूलों के बीच की बहस कोई नई बात नहीं है। लेकिन इस सदी की शुरुआत में शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई.) विधेयक के आने से इस बहस में तेजी आई है। हाल के दिनों में निजी स्कूली शिक्षा के समर्थकों और विरोधियों के बीच की खाई बढ़–सी गई है। इसके आलोचक मानते हैं कि निजी स्कूलों से स्कूली शिक्षा के आर्थिक स्तरीकरण को बढ़ावा मिलेगा जो हानिकारक है और बच्चों के निजी स्कूलों में दाखिले से सरकारी स्कूली शिक्षा बिगड़ेगी – शायद इसलिए कि 'बेहतर बच्चे' निजी स्कूलों में चले जाएँगे। उनका कहना है कि निजी स्कूलों के शिक्षकों का वेतन कम है और उनकी गुणवत्ता भी अच्छी नहीं। उन्हें लगता है कि निजी स्कूली शिक्षा से शिक्षा का व्यावसायीकरण बढ़ेगा और अन्ततः इसका नतीजा यह होगा कि शिक्षा समाज के निर्धन और हाशिया वर्ग की पहुँच से बाहर हो जाएगी।

दूसरी ओर इसके समर्थक हैं जो आँकड़ों का हवाला देते हुए कहते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों तक में निजी स्कूलों में नामांकन बढ़ रहा है; लोग अपने बच्चों को निःशुल्क सरकारी स्कूलों से निकालकर फीस लेने वाले निजी स्कूलों में प्रवेश दिला रहे हैं, भले ही इसके लिए उन्हें अपने जीवन के अन्य क्षेत्रों में थोड़ा बहुत त्याग करना पड़े। अगर लोग मुफ्त में मिलने वाली चीज की उपेक्षा कर रहे हैं तो इसमें कोई न कोई कमी तो होगी। इसके समर्थकों का यह तर्क भी है कि निजी स्कूल माता–पिता के प्रति ज्यादा जवाबदेह और अनुक्रियाशील होते हैं और इनमें बच्चों का अधिगम बेहतर होता है।

ग्रामीण स्कूल

आइए, पहले हम देश के ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों पर नजर डालें जहाँ अब कम फीस लेने वाले कई निजी स्कूल खुल गए हैं और जिनमें दो–तिहाई से ज्यादा बच्चे पढ़ते हैं। इस सदी की शुरुआत से ही भारत में प्राथमिक स्कूलों में नामांकन के आँकड़ों में वृद्धि के साथ–साथ निजी स्कूलों के नामांकन में भी बहुत ज्यादा और लगातार वृद्धि हुई है। यह आँकड़ा शहरी क्षेत्रों में हमेशा से ही उच्च था, एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (ASER) 2014 के नवीनतम आकलनों से यह संकेत मिलता है कि ग्रामीण प्राथमिक कक्षाओं के प्रति दस बच्चों में से तीन से अधिक बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं। बच्चे किसी भी सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि के क्यों न हों, इस बात की माँग बढ़ती जा रही है कि निजी स्कूलों में उनके अभिगम को बढ़ाया जाए। निजी स्कूलों की इस बढ़ती लोकप्रियता से यह चिन्ता भी पैदा हो रही है कि सामान्य रूप से समाज में और विशेष रूप से स्कूलों में आर्थिक और सामाजिक स्तरीकरण और न बढ़ जाए। कई लोगों का मानना है कि फीस लेने वाले निजी स्कूलों की इस बढ़ती लोकप्रियता का कारण यह है कि माता–पिता सरकारी स्कूलों से असन्तुष्ट हैं। आँख मूँदकर यह बात मान ली जाती है कि निजी स्कूल बेहतर हैं। यह धारणा कितनी सच है?

निजी स्कूलों के समर्थकों का एक प्रमुख तर्क इस तथ्य पर आधारित है कि निजी स्कूलों में बच्चों की अधिगम–उपलब्धि बेहतर है। अपने दावे को साबित करने के लिए वे स्कूल की परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के व्यापक आँकड़े दर्शाते हैं। चूँकि विभिन्न स्कूलों की परीक्षाएँ अलग होती हैं और दो प्रकार के स्कूलों से प्राप्त आँकड़ों की तुलना नहीं की जा सकती। इसलिए इस तर्क के जवाब में ऐसी परीक्षाओं के परिणाम देखे जाते हैं जो दो प्रकार के स्कूलों में एक साथ तथा एक सामान्य–आकलन–प्रश्न पत्र देकर ली गई हों और उसमें भी निजी स्कूलों के बच्चे सरकारी स्कूलों के बच्चों को मात देते से प्रतीत होते हैं। यही उनका 'ठोस सबूत' है।

इस तरह की सोच की एक गम्भीर सीमा है। सरकारी स्कूल के बच्चों की तुलना में निजी स्कूल के बच्चों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि काफी अलग होती है। इसलिए यह तुलना बहुत असमान है और इनकी तुलना करना ऐसा ही है जैसे सेब और सन्तरे की तुलना करना। अगर निष्पक्ष रूप से तुलना करनी है तो यह जरूरी है कि समान पृष्ठभूमि वाले निजी और सरकारी स्कूलों के बच्चों का आकलन सामान्य उपकरणों या साधनों का उपयोग करते हुए एक साथ किया जाए।

इसी जरूरत ने आन्ध्र प्रदेश स्कूल चॉइस स्टडी (एपी.एस.सी.) को बढ़ावा दिया। यह एक पंचवर्षीय अनुदैर्घ्य सहगण शोध five-year longitudinal cohort research[1] है जिसमें मूल्यांकन के एक रिगरस रैंडम डिजाइन का प्रयोग किया गया। यह अध्ययन 2008 और 2013 के बीच तत्कालीन आन्ध्र प्रदेश के पाँच जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में किया गया। यह बहुत महत्त्वपूर्ण अध्ययन है – भारत में अपनी तरह का अकेला और दुनिया के सबसे बड़े अध्ययनों में से एक। यह अध्ययन पहली बार सामाजिक–आर्थिक रूप से कमजोर ऐसे बच्चों के प्रभाव पर प्रामाणिक आँकड़े प्रदान करता है जिन्हें छात्रवृत्ति देकर निजी स्कूलों में पढ़ने का अवसर दिया गया। भविष्य में भारत में शिक्षा को दिशा देने की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

यह अध्ययन स्पष्ट और निर्णायक रूप से प्रतिपादित करता है कि निजी स्कूलों में पढ़ने के बावजूद 'छात्रवृत्ति प्राप्त बच्चों' को अकादमिक रूप से लाभ नहीं हुआ। तेलुगू, गणित, सामाजिक अध्ययन और अँग्रेजी के अधिगम–उपलब्धि टेस्ट में उनका प्रदर्शन ऐसे बच्चों से बेहतर नहीं है जो पाँच साल बाद भी सरकारी स्कूलों में पढ़े। जाहिर है कि यह बात निजी स्कूलों के बारे में प्रचलित आम धारणा के विपरीत है। दिलचस्प बात तो यह है कि छात्रवृत्ति प्राप्त बच्चों के माता–पिता निजी स्कूलों से खुश होने का दावा करते हैं। विरोधाभास कहाँ है? ये माता–पिता क्यों अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेज रहे हैं?

इस अध्ययन के दौरान एकत्रित गुणात्मक आँकड़ों से सम्भावित उत्तर मिलते हैं। लगता है कि माता–पिता अपने बच्चों के स्मार्ट दिखने, शिक्षकों द्वारा गृह कार्य देने, पढ़ाने के अँग्रेजी माध्यम, समुदाय में अपनी सामाजिक स्थिति के सुधरने जैसी बातों से प्रभावित हो गए थे। स्पष्ट है कि यहाँ कुछ अन्य पहलुओं को अधिगम–उपलब्धि से ज्यादा प्रमुखता दी जा रही है। इसके अलावा लगता है कि निजी स्कूल कुछ ही लोगों को लाभान्वित कर रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? शायद इस विरोधाभास का कारण हमें स्कूल के बाहर मिले जैसे बेहतर शिक्षित माता–पिता, घर का बेहतर

शैक्षिक वातावरण और वहाँ पर मिलने वाली सहायता या समर्थन, प्राइवेट ट्यूशन लेना और बच्चों पर कम घरेलू जिम्मेदारियाँ होना।

इस अध्ययन से एक और रोचक प्रश्न सामने आता है – हो सकता है कि इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष सच हों लेकिन यह अध्ययन आन्ध्र प्रदेश से सम्बन्धित है। क्या हमें भारत के अन्य राज्यों से भी इसी प्रकार के निष्कर्ष मिल सकते हैं? निस्सन्देह यह एक बहुत ही वैध (और महत्त्वपूर्ण) प्रश्न है। देश के किसी अन्य भाग में ऐसा कोई अध्ययन नहीं किया गया है जिसकी तुलना इस कठोर और बड़े पैमाने पर किए गए अध्ययन से की जा सके। लेकिन अन्य राज्यों में कुछ और शोध हुए हैं (हालाँकि वे माध्यमिक डेटा विश्लेषण पर आधारित हैं) जो इसी तरह के परिणामों को संकेतित करते हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख APSC अध्ययन के पेपर में किया गया है। हाल ही में असर (ग्रामीण) 2014[2] के एक विश्लेषणात्मक लेख में कहा गया है कि जब स्कूल के प्रकार के अलावा अन्य सभी कारकों का ध्यान रखा जाए तो सरकारी स्कूल और निजी स्कूल के बच्चों के अधिगम–परिणामों में बहुत कम अन्तर दिखाई देता है। इन पंक्तियों के लेखक का तो यह कहना है कि वास्तव में कुछ राज्यों में सरकारी स्कूल के बच्चों का प्रदर्शन बेहतर प्रतीत हो रहा था। इसलिए कुल मिलाकर यही लगता है कि अधिगम–परिणामों के सन्दर्भ में यह जो निष्कर्ष मिला है कि ग्रामीण क्षेत्रों के निजी स्कूल सरकारी स्कूलों से बेहतर नहीं हैं – उसे पूरे देश पर सामान्य रूप से लागू किया जा सकता है।

शहरी स्कूल

चलिए, अब हम शहरी क्षेत्रों में चलें, विशेष रूप से उन स्कूलों की ओर जिन्हें 'सम्भ्रान्त या उच्च वर्ग का स्कूल' कहा जाता है। इस बारे में एक बहुत रोचक अध्ययन – 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा अध्ययन'[3] 2006 में किया गया। यह अध्ययन विप्रो और एजुकेशन इनिशिएटिव्स द्वारा भारत के मेट्रो शहरों के सर्वश्रेष्ठ स्कूलों में किया गया। इस अध्ययन से संकेत मिलता है कि भारत में सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले स्कूल भी परिपूर्ण नहीं हैं, वहाँ भी अभी बहुत कुछ अपेक्षित है। वहाँ के विद्यार्थियों का प्रदर्शन वैश्विक औसत से नीचे है। ये विद्यार्थी याद करने और प्रक्रियात्मक कौशलों में तो अच्छे हैं लेकिन समझ, अवधारणात्मक स्पष्टता और सोच व अनुप्रयोग जैसे क्षेत्रों में नहीं। अगर शहर के सर्वश्रेष्ठ निजी स्कूलों में ऐसी स्थिति है तो इस बात की कल्पना की जा सकती है कि शहर के अन्य निजी स्कूलों में विद्यार्थियों की क्या हालत होगी।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एक आँकड़ा और भी उपलब्ध है जो देश में शिक्षा की निराशाजनक स्थिति की पुष्टि करता है। बहुत समझाने–बुझाने के बाद पहली बार देश के दो राज्यों तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश ने पीसा (PISA) 2009+ आकलन[4] में भाग लिया। इसमें 15 साल के बच्चों (ग्रामीण और शहरी इलाकों से रेंडम रूप से चयनित) की अधिगम–उपलब्धि का आकलन किया गया। इसके परिणामों से पता चला है कि भाग लेने वाले 74 देशों में हमारा स्थान नीचे से दूसरा था... बस किर्गिस्तान से ऊपर। उसके बाद भारत ने पीसा में भाग नहीं लिया। हालाँकि ऐसे लोग भी हैं जो पीसा के परीक्षण–साधनों और प्रक्रियाओं से सहमत नहीं हैं लेकिन फिर भी यह अपनी ही कहानी कहता है।

क्या प्रतिद्वन्द्विता सहायक है?

निजी स्कूलों के समर्थक एक तर्क और देते हैं जो 'प्रतिद्वन्द्विता सिद्धान्त' पर आधारित है। उनका दावा है कि निजी स्कूलों की संख्या बढ़ने से प्रतिद्वन्द्विता भी बढ़ती है जिससे स्कूल की गुणवत्ता में सुधार होता है। यहाँ तक कि सरकारी स्कूलों में भी सुधार देखा जा सकता है। इस विचार के सबूत के रूप में बैंकिंग, एयरलाइंस और मोबाइल टेलीफोन क्षेत्रों के उदाहरण दिए जाते हैं। यह अत्यन्त एकआयामी अर्थमितीय परिप्रेक्ष्य है जो एक 'सामाजिक उद्देश्य' को वाणिज्यिक माल के साथ मिलाना चाहता है। ये दोनों तो तुलनीय हैं ही नहीं। अफसोस है कि वे लोग इस तर्क का उपयोग आक्रामक तरीके से करते हैं जो 'शिक्षा वाउचर्स' (या इसे स्कूल विकल्प के रूप में भी जाना जाता है) के पक्ष में बात करते हैं। अब ऐसे सबूत बढ़ते जा रहे हैं जो सुझाते हैं कि वास्तव में शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता हानिकारक हो सकती है। अगस्त 2014 के PISA Infocus 42[5] पर आधारित एक विश्लेषणात्मक विश्लेषण इंगित करता है कि स्कूल विकल्प से अलगाव बढ़ सकता है जो अधिगम की उपलब्धियों के लिए हानिकारक है। कई लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि फिनलैण्ड, जो लगातार कई वर्षों तक शिक्षा की गुणवत्ता के मामले में सबसे आगे माना जाता है, के स्कूलों में

कोई 'मानकीकृत आकलन'[6] नहीं है। उनका फोकस तो समावेशन और समता पर है। जाहिर है कि भारत के निजी और सरकारी स्कूलों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

निष्कर्ष

अपने निष्कर्ष में मैं यह बात जोड़ना चाहता हूँ कि इस लेख का आशय निजी स्कूलों की भर्त्सना करना कदापि नहीं है। सरकारी स्कूलों की अपनी समस्याएँ और कमियाँ हैं। इसका अभिप्रेत तो यह है कि देश में शिक्षा की गुणवत्ता पर बहस करने के लिए एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया जाए। आँख मूँदकर यह मान लेना सही नहीं होगा कि निजी स्कूल अच्छी शिक्षा देते हैं। हाल के दिनों में हुए अन्तरराष्ट्रीय स्तर के अधिकाधिक अध्ययन यह संकेत देते हैं कि निजी स्कूल सरकारी स्कूलों से बेहतर नहीं हैं। भारत में ऐसे स्कूल हैं (सरकारी और निजी दोनों) जो अपने विद्यार्थियों को बहुमुखी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का अच्छा कार्य कर रहे हैं। हालाँकि ऐसे स्कूल कम हैं। हमारी कोशिश तो यह होनी चाहिए कि हम इन स्कूलों की गुणवत्ता को कैसे सुधार सकते हैं। इसका एक तरीका तो यह हो सकता है कि स्कूल के स्तर पर भारतीय स्कूलों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली विधियों को अपनाया जाए और प्रणालीगत तथा नीति के स्तर पर फिनलैण्ड जैसे देशों से सीखा जाए।

References :

1. 'Does school choice help rural children from disadvantaged sections? Evidence from longitudinal research from Andhra Pradesh', D D Karopady, Economic and Political Weekly, December 2014, Mumbai, India
2. 'Government vs private schools: Have things changed', Willima Wadhwa, ASER (Rural) 2014, ASER Center, New Delhi
3. 'Wipro-EI Quality Education Study, 2011', accessed online at http://www.wiproapplyingthoughtinschools.com/sites/default/files/ Wipro%20-%20EI%20Quality%20 Education%20Study%20-%20 Executive_Summary.pdf
4. Results of PISA 2009+ released by ACER, December 2011 accessed online at http://www.acer.edu.au/media/article/acer-releasesresults-of-pisa-2009-participant-economies
5. PISA in Focus 42, Organisation for Economic Cooperation and Development, August 2014 accessed online at http://www.oecd. org/pisa/pisaproducts/ pisainfocus/ PISA-in-Focus-N42-(eng)-FINAL.pdf
6. 'Education System', Finnish National Board of Education, accessed on line at http://www.oph.fi/english/education_system

डी.डी. करोपाडी अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के रिसर्च सेण्टर के सलाहकार हैं। इससे पहले वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में शोध और प्रलेखन विभाग के प्रमुख थे। कार्पोरेट क्षेत्र में मार्केट रिसर्च के दो दशकों के अनुभव के बाद वे सामाजिक कार्यक्षेत्र में आए। उन्होंने आई.आई.टी. कानपुर से प्रौद्योगिकी में बुनियादी डिग्री और बाद में आई.आई.एम. कलकत्ता से स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। उनसे karopady@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल